CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर सुरभि

केरल विश्वविद्यालय प्रकाशन

UNIVERSITY OF KERALA

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर सुरभि

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(Hindi)
SUR SURABHI
Poetry Collection

Compiled by
a committee appointed by
University of Kerala

Printed at
Valsa Printers,
Trivandrum—695 014

Published 1981

Price Rs. 2/-

Published by
Chemmanam Chacko
Director
Department of Publications
For the University of Kerala
Trivandrum

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर सुरभि

प्रकाशन विभाग
केरल विश्वविद्यालय
तिरुवनन्तपुरम
१९८१

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Compiled by
The Board of Studies in Hindi (Pass)
University of Kerala

मुद्रण:

वत्सा मुद्रणालय, तिरुवनन्तपुरम्

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राक्कथन

केरल विश्वविद्यालय की बी० ए० कक्षा के ऐच्छिक हिन्दी पाठ्यक्रम में तुलसीदास और सूरदास की कविता अनिवार्य रूप से पढ़ायी जाती है। किंतु कुछ वर्षों से उनकी कविताओं का कोई छात्रोपयोगी संकलन उपलब्ध नहीं है। इस अभाव को दृष्टिगत रखते हुए हिन्दी पाठ्य परिषद 'तुलसी सौरभ' नाम से तुलसीदास की कुछ प्रतिनिधि कविताओं का एक संग्रह निकाल चुकी है। अब ऐसा ही एक संग्रह, सूरदास के पदों का 'सूर सुरभि' नाम से निकाला जा रहा है। आशा है कि हिन्दी अध्यापक और विद्यार्थी इस प्रयास का स्वागत करेंगे।

हिन्दी पाठ्य परिषद्
केरल विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय सूची

कवि परिचय ix

विनय १

बालकृष्ण १४

भ्रमरगीत ३१

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कवि-परिचय

हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों में सूरदास का सर्वोच्च स्थान है । वात्सल्य वर्णन में वे विश्व के महान कवियों में समझे जाते हैं । उन का सूर सागर काव्य रस का सागर ही है । मथुरा तथा आगरा के बीच रुनकता नामक ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में इन का जन्म हुआ । सूर महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्यों में प्रमुख और प्रधान थे । वे श्रीनाथजी के मन्दिर के कीर्तनकार थे । वे नित्य नवीन पद का निर्माण कर भगवद्भक्ति का प्रसाद प्राप्त करते थे । हिन्दी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास के पश्चात उनका नाम लिया जाता है किन्तु नूतन प्रसंगों के उद्घोष में वे तुलसी से कहीं आगे बढते हुए दृष्टिगोचर होते हैं ।

आप की रचनाओं में 'सूरसागर', 'सूर सारावली' तथा 'साहित्यलहरी' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

काव्यगत विशेषतायें :—

गीतकाव्य की परंपरा का निर्वाहण करनेवाले काव्यकारों में सूर का विशिष्ट स्थान है वात्सल्य और श्रृंगार का अनूठा वर्णन जैसा आप की कृतियों में मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं । उन्होंने बालक की एक एक चेष्टा, उस की एक एक चित्तवृत्ति तथा उसकी एक एक क्रीडा को बडी सूक्ष्मता से चित्रित किया है ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस संकलन में विनय और बाललीला तथा भ्रमरगीत प्रसंग से पद दिये गये हैं। विनय के पदों में भक्त का दैन्य प्रदर्शन है और अपनी अकिंचनता का दीन स्वर में तथा आराध्य की अति महानता और परम उदारता का गद्गद होकर वे बर्णन करते हैं। इस के साथ ही साथ माया के प्रपंचों और उन के प्रलोभन में प्राणी के फँस जाने की मूर्खता का वर्णन है।

बाललीला में श्रीकृष्ण का जन्म, उनकी बाललीलायें, उन्हें देख कर पुरजन-परिजन का आनन्द विनोद, बालक के संबन्ध में माता-पिता की वात्सल्य भरी कल्पनायें और अभिलाषायें आदि विषय आते हैं।

सूरसागर के दशम स्कन्ध का सब से महत्वपूर्ण विषय है गोपियों का परस्पर वर्णित और ऊधव से निवेदित वियोगवर्णन। इस प्रसंग के पद गोपियों की विरह-दशा से परिचित कराते है। इन में विरहिणी व्रजबालाओं का करुण क्रंदन सा गूँजता है। भोली भाली प्रेममयी गोपिकाओं की विरह-जन्य कातरता कभी संयोग की पूर्वस्मृतियों से उन्हें पुलकित करती है, कभी अपने अभाग्य को कोसने को विवश करती है और कभी क्षुब्ध स्वर में प्रियतम की निष्ठुरता का बखान करने को प्रेरित करती है। निराशा, उन्माद और प्रलाप की ऐसी स्थितियों में सामान्य भाषा का साधारणतया मुहावरों और लोकोक्तियों से युक्त हो जाना स्वाभाविक ही कहा जायगा। सूरसागर का यह अंश उक्तियों की मार्मिकता और वाग्विदग्धता की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है।

गोपी और कृष्ण का सूर-काव्य में वर्णित संबन्ध दो दृष्टियों से है—एक तो उस में साधारण स्त्री पुरुष के प्रेमपूर्ण आकर्षण, व्यवहार और वेदना का वर्णन है और दूसरे जीव और ईश्वर के बीच के उस आकर्षण का, जिस का अनुभव मानव-हृदय सृष्टि के आदिकाल से करता चला आ रहा है।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृष्ण काव्य में आरंभ से ही इस विषय की प्रधानता है। आगे के संस्कृत कवि ईश्वर और जीव का संबन्ध तो गोपी-कृष्ण की उक्त कथा में धीरे धीरे भूल गये, केवल स्त्री पुरुष की कथा, स्त्री पुरुष का पारस्परिक प्रेम, वेदना, विरह आदि उन के सामने रह गये। राधा की सृष्टि इसी समय की है। सूरदास ने कथा के दोनों अंगों पर दृष्टि रखी थी। उन्होंने गोपी कृष्ण को लेकर मनुष्य जीवन के स्त्री पुरुष प्रसंग की ओर संकेत करते हुए जीव और ईश्वर का संबन्ध, आकर्षण, व्यवहार और वेदना दिखाने का सफल प्रयत्न किया है। सूर के पश्चात के रीतिकालीन कवियों की दृष्टि इतनी व्यापक नहीं थी। उन्होंने गोपी-कृष्ण की जीवन घटनाओं को देखा अवश्य, परन्तु अपनी संकुचित दृष्टि और परिमित लक्ष्य के कारण उन्हें अपना सके, स्त्री पुरुष के साधारण आकर्षण और व्यवहार के रूप में ही। अलौकिक तत्व-जीव-ईश्वर संबन्ध की ओर उनका ध्यान नहीं जा सका। उन के काव्य में आगे चल कर जो शृंगारिक अश्लीलता आ गयी उसका कारण केवल उनका संकुचित दृष्टिकोण ही है।

'सूरसागर' का अन्य मुख्य विषय कृष्ण का बालचरित वर्णन है और तीसरा विषय ईश्वर के प्रति उनकी भक्ति। ये दोनों विषय प्रथम से ही संबन्धित हैं। गोपीयों के साथ जिस कृष्ण का पति रूप में संबन्ध दिखाना कवि को अभीष्ट है उस के बाल-रूप और बाल-स्वभाव का वर्णन करके कवि आरंभ से ही मनुष्य मात्र को उन पर मुग्ध कर लेना चाहते हैं। कृष्ण का बाल-रूप और बाल-लीलायें माता-पिता को तो मुग्ध करती ही हैं, उन के गाँव के अन्य व्यक्ति भी उनको देख कर मुग्ध हो जाते है। ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि सूरकाव्य में हमें कृष्ण का लौकिक जीवनचरित ही मिलता है। बालक बन कर वे लीलायें करते हैं, युवा होने पर प्रेम करते हैं और आवश्यक कार्य से 'परदेश' जाते हैं। कवि की दृष्टि इस के साथ पारलौकिक जीवन की ओर भी चल रही है। वह उन्हें ईश्वर रूप में भी देखता है,

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उन की भक्ति करता है और विनय के गीत गाता है। मनुष्य मात्र केलिए दोनों विषय शाश्वत हैं। प्रेम की रसमय लीलायें भी उस ने की हैं; और अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उस ने संसार से विरक्त होकर ईश्वर-भक्ति का गान भी किया है।

सूरदास ने सभी प्रसंगों में स्वानुभूति से ही काम लिया। सूर की शैली गीत काव्य की है। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह किसी न किसी राग के अन्तर्गत ही लिखा है। फिर भी उन की रचनाओं में छंदों की विविधता है। उस में कवित्त, छप्पय, रोला, चौपाई आदि सब का यथास्थान विषय के अनुसार विधान है। पर इन सबका विधान राग रागिणियों के अन्तर्गत ही हुआ है। कीर्तन से ही उन्होंने अपने काव्य का आरंभ किया है और कीर्तन से ही उस का अन्त। उन्होंने अपने सभी छंदों को गेय बनाया है और उन में साहित्य और संगीत का अभूतपूर्व सभन्वय किया है।

रस के आयोजन में अलंकारों के प्रयोग में और भाषा को सजाने संवारने में सूर भावी कवियों के पथप्रदर्शक हैं। रस परिपाक की दृष्टि से सूर का काव्य अत्यन्त उत्कृष्ट है। वातसल्य रस के तो वे सम्राट हैं। शृंगार रस में संयोग की अपेक्षा विप्रलंभ शृंगार ही अधिक है। सूर का अलंकार विधान भी अत्यन्त उच्चकोटि का है। सूर की भाषा व्रजभाषा है।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विनय

१

चरन-कमल बंदौं हरि-राई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कुछ दरसाइ ॥
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ ॥
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहिं पाइ ॥

२

अविगत-गति कछु कहत न आवै ।
ज्यौं गूँगें मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै ॥
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै ।
मन-बानी कौं अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ॥
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै ।
सब विधि अगम विचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै ॥

---

१ चरन-कमल — कमल जैसे चरन; बन्दौं — प्रणाम करता हूँ; हरिराई — हरिराज; पंगु — लंगडा; लंघै — पार जाता है, लाँघ जाता है; बहिरौ — जो कान से सुन न सके; गूँगा — मूक जो बोल न सके; पाई — पैर ।

२ अबिगत — जो जाना न जाय, अज्ञात; अंतर्गत — भीतर, हृदय के; निरालंब — आलंबहीन ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३

प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ।
अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनि राइ ।।
तिनका सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु-समान।
सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूँद-तुल्य भगवान ।।
बदन-प्रसन्न-कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसैं।
विमुख भए अकृपा न निमिषहूं, फिरि चितयौं तौ तैसैं ।।
भक्त-बिरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे।
सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे ।।

४

काहू के कुल तन न विचारत।
अविगत की गति कहि न परति है, व्याध-अजामिल तारत ।।
कौन जाति अरु पाँति बिदुर की, ताही कैं पग धारत।
भोजन करत माँगि घर उनकैं, राज-मान-मद टारत ।।
ऐसे जनम-करम के ओछे, ओछनि हूँ व्यौहारत ।
यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त-बछल-प्रन पारत ।।

---

३ सुभाई — आदत, बान; तिनका — सूखी घास का टुकडा; डोलत — घूमते-फिरते हैं; पीठि — पीठ।

४ टारत — टालते हैं, मिटाते हैं; ओछे — जो गंभीर या उच्चाशयन हो; सुभाव — स्वभाव; बछल — वत्सल; प्रन — छोटों से स्नेह करनेवाला, प्रण।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५

स्याम गरीबनि हूँ के गाहक ।
दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निवाहक ।
कहा बिदुर की जाति-पाँति, कुल, प्रेम-प्रीति के लाहक ।।
कहा पांडव कैं घर ठकुराई ? अरजुन के रथ वाहक ।
कहा सुदामा कैं धन हो ? तौ सत्य-प्रीति के चाहक ।।
सूरदास सठ, तातैं हरि भजि आरत के दुख-दाहक ।

६

जे जन सरन भजे बनवारी ।
ते ते राखि लिये जग-जीवन, जहँ-जहँ बिपति परी तहँ टारी ।।
संकट तैं प्रहलाद उधारयौ, हिरनाकसिप-उदर नख फारी ।
अंबर हरत द्रुपद-तनया की दुष्ट-सभा मधि लाज सम्हारी ।।
राख्यौ गोकुल बहुत बिघन तैं कर-नख पर गोवर्धन धारी ।
सूरदास प्रभु सब सुख-सागर, दीनानाथ, मुकुंद मुरारी ।।

---

५ गाहक — खरीदनेवाला, मोल लेनेवाला, प्रेमी, इच्छुक; निवाहक— निर्वहण करनेवाला; लाहक — चाहनेवाला; ठकुराई — प्रभुता' बडप्पन, श्रेष्ठता ।

६ वनवारी — वनमाली, श्रीकृष्ण; उधारयौ — उद्धारा, मुक्त किया; अंबर — वस्त्र, कपडा, पट ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७

तातैं जानि भजे बनवारी । सरनागत की ताप निवारी ।।
जन-प्रहलाद-प्रतिज्ञा पारी । हिरनकसिपु की देह बिदारी ।।
ध्रुवहिं अभै पद दियौ मुरारी । अंबरीष की दुर्गति टारी ।।
द्रुपद-सुता जब प्रकट पुकारी । गहत चीर हरि-नाम उबारी ।।
गज, गनिका, गौतम-तिय तारी। सूरदास सठ, सरन तुम्हारी ।।

८

जाकौं मनमोहन अंग करै ।
ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं, जौ जग बैर परै ।।
हिरनकसिपु-परहारि थक्यौ, प्रहलाद न नैंकु डरै ।
अजहुँ लगि उत्तानपाद-सुत, अविचल राज करै ।।
राखी लाज द्रुपद-तनया की, कुरुपति चीर हरै ।
दुरजोधन कौ मान भंग करि, बसन प्रवाह भरै ।।
जौ सुरपति कोप्यौ व्रज ऊपर, क्रोधं न कछू सरै ।
व्रज-जन राखि नन्द कौ लाला, गिरिधर विरद धरै ।।
जाकौ विरद है गर्व-प्रहारी, सो कैसें बिसरै ?
सूरदास भगवंत-भजन करि, सरन गए उबरै ।।

---

७ बिदारी — चीर डाली, फाड़ दी; अभै — निर्भय, निडर; उबारी — उद्धार किया, रक्षा की ।

८ केस खसै — अनिष्ट या असंगल हो; परै — पूरा होता है; बिसरै — भुला दिया; उबरै — उद्धार पा सकता है, मुक्त रहें, बच जाँय ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९

कहा कमी जाके राम धनी ।
मनसा-नाथ मनोरथ-पूरन, सुख-निधान जाकी मौज घनी ।।
अर्थ-धर्म अरु काम-मोक्ष फल, चारि पदारथ देत गनी ।
इन्द्र समान हैं जाके सेवक, नर बपुरे की कहा गनी ।।
कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी-अपनी ।
खाइ न सकै खरचि नहिं जानै, ज्यों भुवंग-सिर रहत मनी ।।
आनँद-मगन राम-गुन गावै, दुख-सँताप की काटि तनी ।
सूर कहत जे भजत राम कौं, तिन सौं हरि सौं सदा बनी ।।

१०

माधौ जु, मन माया बस कीन्हौ ।
लाभ-हानि कछु समुझत नाहीं, ज्यौं पतंग तन दीन्हौं ।।
गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति ज़ोर ।
मैं मति हीन मरम नहिं जान्यौ, परयौं अधिक करि दौर ।।
बिबस भयौं नलिनी के सुक ज्यौं, बिन गुन मोहि गह्यौ ।
मैं अज्ञान कछू नहिं समुझ्यौ, परि दुख-पुंज सह्यौं ।।
बहुतक दिवस भए या जग मैं, भ्रमत फिरयौ मति-हीन ।
सूर स्यामसुन्दर जो सेवै, क्यौं होवै गति दीन ।।

---

९ मनी — अभिमान, मणि, रत्न; कृपिन — कंजूस ।

१० दौर — दौडने की क्रिया; सेवै — परिचर्या करे, पूजा करे ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११

अब हौं माया-हाथ बिकानौ।
परबस भयौ पसू ज्यौं रजु-बस, भज्यौ न श्रीपति रानौ ॥
हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आसाहीं लपटानौ ।
याही करत अधीन भयौ हौं, निद्रा अति न अघानौ ॥
अपने हीं अज्ञान-तिमिर मैं, बिसरयौ परम ठिकानौ ।
सूरदास की एक आँखि है, ताहू मैं कछु कानौ ॥

१२

इत-उत देखत जनम गयौ।
या झूठी माया कैं कारन, दुहुं दृग अंध भयौ ॥
जनम-कष्ट तैं मातु दुखित भइ, अति दुख प्रान सह्यौ ।
वे त्रिभुवनपति बिसरि गए तांहि, सुमिरत क्यौं न रह्यौ ॥
श्री भागवत सुन्यौ नहिं कबहूँ, बीचहिं भटकि मरयौ ।
सूरदास कहै, सब जग बूड्यौ, जुग-जुग भक्त तरयौ ॥

---

११ बिकानै — बिक गया हूँ, दास हो गया हूँ; परबस — पराधीन; लपटानौ — लगा, लिपटा, सना हुआ; अघानौ — संतुष्ट हुआ, मन भरा; ठिकानौ — आश्रय स्थान, अवलंब ।

१२ भटकि — मारे-मारे फिरकर, व्यर्थ इधर-उधर घूमकर; बूड्यौ — डूब गया, निमज्जित हो गया; तरयौ — सद्गति पायी ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१३

अब कैसें पैयत सुख माँगे ।
जैसोई बोइयै तैसोइ लुनिऐ, कर्मन भोग अभागे ॥
तीरथ-व्रत कछुवै नहिं कीन्हौ, दान दियौ नहिं जागे ।
पछिले कर्म सम्हारत नाहीं, करत नहीं कछु आगे ॥
बोवत बबुर, दाख फल चाहत, जोवत है कल लागे ।
सूरदास तुम राम न भजि कै, फिरत काल सँग लागे ॥

१४

तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान ।
छूटि भये कैसे जन जीवहिं ज्यों प्रानी बिनु प्रान ॥
जैसे मगन नाद बन सारँग बधै बधिक तनु बान ।
ज्यों चितवै ससि ओर चकोरी देखत ही सुख मान ॥
जैसे कमल होत परफुल्लित देखत दरसत भान ।
सूरदास प्रभु हरिगुन मीठे नित प्रति सुनियत कान ॥

१५

क्यों तू गोविंद नाम बिसारौ ?
अजहुं चेति, भजन करि हरि कौ, काल फिरत-सिर ऊपर भारौ ॥
धन-सुत-दारा काम न आवैं, जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, चल्यौ पछिताइ, नयन जल ढारौ ॥

---

१३ लुनिऐ — फसल काटिये; पछिले — विगत, पूर्व के; दाख — अंगूर; बोवत — बोता है, उगाता है; बबुर — बबूल, एक काँटेदार पेड ।

१४ सारंग — मृग; चकोरी — मादा चकोर; भान — भानु, सूर्य ।

१५ चेति — चेता, सचेत या सावधान हुआ; ढारौ — गिराकर बहाओ ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१६

बन्दौं चरन सरोज तुम्हारे ।
जे पदपदुम सदा सिव के धन, सिंधु सुता उर तैं नहिं टारे ।।
जे पदपदुम परसि भई पावन, सुरसरि दरस कटत अध भारे ।
जे पदपदुम परसि ऋषिपत्नी बलि नृग, व्याध पतित बहु तारे ।।
जे पदपदुम रमत वृन्दावन अहि सिर धरि अगनित रिपु मारे ।
जे पदपदुम परसि व्रजभामिनि सरवसुदै सुत सदन बिसारे ।।
जे पदपदुम रमत पांडव दल, दूत भये सब काज सँवारे ।
'सूरदास' तेई पदपंकज त्रिविध ताप दुखहरन हमारे ।।

१७

जा दिन मन पंछी उडि जैहै ।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहै ।।
था देही कौ गरब न करियै, स्यार-काग-गिध खै हैं ।
तीर्नानि मैं तन कृमि, कै विष्टा, कै ह्वै खाक उडे हे ।।

---

१६ अध — पाप, पातक, अधर्म; नृग — एक दानी राजा, जिन्होंने अनजाने ही एक ब्राह्मण की गाय अपनी सहस्त्र गौओं के साथ दूसरे ब्राह्मण को दान में दे दी, गायंहरण के पाप का फल भोगने केलिए राजा नृग को सहस्त्र वर्ष केलिए गिरगिट होकर कुएँ में रहना पडा । इस योनी से श्रीकृष्ण ने उनका उद्धार किया; त्रिविध ताप — ताप, ताप-त्रय, आध्यात्मिक, अधिदैविक और आधि — भौतिक ।

१७ पंछी — पक्षी; झरि — झडकर, गिर कर; काग — कौआ; गिध — गीध पक्षी; विष्टा — मैला, मल; घिनैहैं — घृणा करेंगे अरुचि दिखायेंगे ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रंग रूप दिखै है।
जिन लोगनि सों नेह करत है, तेई देखि घिनै हैं॥
घर के कहत सवारे काढौ, भूत होइ धरि खै हैं।
जिन पुत्रनिहि बहुत प्रतिपाल्यो, देवी-देव मनै हैं॥
तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरै हैं।
अजहुँ मूढ करौ सतसंगति, संतनि मैं कछु पहै॥
नर-वपु धारि नाहिं जन हरिकौं, जम की मार सो खैहै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु वृथा सु जनम गँवैहे॥

१८

भगति बिनु सूकर कूकर जैसे।
बिग बगुला अरु गोध घुघुआ आय जनम लियो तैसे॥
ज्यौं लोमरी बिलाव भुजंगम रहत कंदरनि वैसे।
तकैं न अवधि, न सुत दारा वे, उन्हें भेव कहो कैसे॥
जीव मारि कै उदर भरत हैं रहत असुद्ध अनैसे।
'सूरदास' भगवंत भजन बिनु जैसे ऊँट, खर, भैंसे॥

१९

माधो! वै भुज कहाँ दुराये।
जिनहिं भुजनि गोवर्धन धारयो सुरपति गर्व नसाये॥
जिनहिं भुजनि काली को नाथ्यो कमल नाल लै आये।
जिनहिं भुजनि प्रहलाद उबाह्यो हिरन्याच्छ कों धाये॥

---

१८ सूकर — सुअर; कूकर — कुत्ता श्वान; लोमरी — भेडा; बिक — एक पक्षी; बगुला — वक, बगला; खर — गधा।

१९ दुरायो — गुप्त रखा, प्रकट न किया; नसाये — नष्ट किया, दूर किया; ढहाये — ध्वंस किया।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिनहिं भुजनि दाँवरी बँधाये जमला मुकति पठाये ।
जिनहिं भुजनि गजदंत उपाख्यो मथुरा कंस ढहाये ।।
जिनही भुजनि अघासुर मारव्यो गोसुत गाय मिलाये ।
तिहिं भुज की बलि जाय 'सूर' जिन तिनका तोरि दिखाये ।।

२०

प्रभु मेरे औगुन चित न धरो ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो अपने पनहि करो ।।
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो ।
यह दुबिधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरो ।।
एक नदिया एक नार कहावत मैलो नीर भरो ।
जब मिलिकै दोउ एकबरन भए सुरसरि नाम परो ।।
एक जीव एक ब्रह्म कहावत 'सूरस्याम' झगरो ।
अबकी बेर मोहिँ पार उतारो नहिँ पन जात टरो ।।

२१

अब मैं जानी, देह बुढानी ।
सीस, पाउँ, कर कह्यौ न मानत, तन की दसा सिरानी ।।
आन कहत, आनै कहि आवत, नैन-नाक बहैपानी ।
मिटि गइ चमक-दमक अँग-अँग की, मति अरु दृष्टि हिरानी ।।
नाहिं रही कछु सुधि तन-मन की, भई जु बात बिरानी ।
सूरदास अब होत बिगूचनि भजि लै सारँगपानी ।।

---

२० बाधिक — बध करनेवाला, जल्लाद; पारस — एक पत्थर जिसका स्पर्श करते ही लोहा सोना हो जाता है; झगरो — झगडा, वाद-विवाद ।

२१ सिरानी — ठंडा होना; बिरानी — दूसरे की ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२२

तजौ मन हरि-बिमुखनि कौं संग ।
जिनकै संग कुमति उपजति है, परत भजन मैं भंग ।।
कहा होत पय पान कराऐं, विष नहिं तजत भुजंग ।
कागहि कहा कपूर चुगाऐं, स्वान न्हवाऐं भंग ।।
खर कौं कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन अंग ।
गज कौं कहा सरित अन्हवाऐं, बहुरि धरै वह ढंग ।।
पाहन पतित बान नहिं बेधत रीतौ करत निषंग ।
सूरदास कारी कामरि पै, चढत न दूजौ रंग ।।

२३

तुम प्रभु, मोसौं बहुत करी ।
नर-देही दीनी सुमिरन कौं, मो पापी तैं कछु न सरी ।।
गरम-बाँस अति त्रास, अधोमुख तहाँ न मेरी सुधि बिसरी ।
पावक जठर जरन नहिं दीन्हो, कंचन-सी मम देह करी ।।
जग मैं जनमि पाप बहु कीन्हे, आदि-अंत लौं सब-बिगरी ।
सूर पतित, तुम पतित-उधारन, अपने बिरह की लाज धरी ।।

---

२२ चुगोएं — दाय खिलाने से; अरगजा — शरीर में लगाने का एक सुगंधित द्रव्य; मरकट — वानर; दूजौ — दूसरा ।

२३ करी — की; सरी — सिद्ध हुआ, पूरा हुआ ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२४

प्रभु हौं सब पतितनि कौ टीकौ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौं जनमत ही कौ।।
बधिक, अजामिल, गनिका तारी, और पूतना ही कौ।
मोहि छाँडि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यों जी कौ ?
कोउ न समरथ अघ करिबे कौं, खैंचि कहत हौं लीकौ।
मरियत लाज सूर पतितनि मैं, मोहु तें को नीकौ ?।।

२५

अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।।
महा मोह के नूपुर बाचत, निन्दा शब्द रसाल।
भरम भरो मन भयो पखावज, चलत कुसगति चाल।।
तृसना नाद करति घट भीतर, नाना विधिदै ताल।
माया को कटि फैंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दियो भाल।।
कोटिककला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
'सूरदास' की सबै अविद्या, दूर करहु नँदलाल।।

---

२४ रीकौ — शिरोमणि, अगुआ; अघ — पाप, पातक; लीकौ — रेखा, लकीर; खैंचि — खींचकर, खसीटकर; नीकौ — भला, अच्छा, श्रेष्ठ।

२५ पहिरि — पट कर, शरीर पर धारण करके; चोलना — ढीला-ढाला कुर्ता; रसाल — सुन्दर, मनोहर, रसीला; पखावज — एक बाजा; फैंटा — कमर-बंद, पटुका; काछि — साज संवारकर, बन-टन कर।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२६

आछो गात अकारथ गारयो ।
करी न प्रीति कमल-लोचन सों जनम जनम, ज्योहारव्यो ॥
निसि दिन विषय बिलासनि बिलसत फूटि गई तब चारव्यो ।
अब लाग्यो पछितान पाइ दुख दीन दई को मारव्यो ॥
कामी कृपन कुचील कुदरसन को न कृपा करि तारव्यो ।
तातें कहत दयालु देव पुनि काहे 'सूर' बिसारव्यो ॥

२७

कहा कमी जाके राम धनी ।
मनसा नाथ मनोरथ-पूरन सुख निधान जाकी मौज घनी ॥
अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष फल चार पदारथ देत छनी ।
इन्द्र समान हैं जाके सेवक मो बपुरे की कहा गनी ॥
कहा कृपन की माया कितनी करत फिरत अपनी अपनी ।
खाइ न सकै खरच नहि जानै ज्यों भुअंग सिर रहत मनी ॥
आनंद मगन रामगुन गावैं दुख संताप की काटि तनी ।
'सूर' कहत जे भजत राम को तिन सों हरि सों सदा बनी ॥

२८

छांडि मन हरि विमुखन को संग ।
जाके सङ्ग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग ॥
कहा भयो पय पान कराये विष नहि तजत भुअंग ।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निस दिन रहत उमंग ॥

---

२६ गारयो — नष्ट किया ।
२७ धनी — धन कन; छनी — थोड़े समय में ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कागहिं कहा कपूर खवाए, स्वान न्हवाये गंग ।
खर को कहा अरगजा लेपन नरकट भूखन अंग ।।
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषंग ।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़ै न दूजो रंग ।।

२९

सबै दिन गये विषय के हेतु ।
देखत ही आपुन पौ खोयो केस भये सब सेत ।।
रुँध्यो स्वाँस मुख बैन न आवत चंद्रा लगीं सँकेत ।
तजि गंगोदक पिये कूपजल पूजत गाडे प्रेत ।।
करि प्रसाद गोविन्द बिसारे बूड्यौ सबनि समेत ।
'सूरदास' कछु खरचु न लागतु कृस्न सुमिरि किन लेत ।।

३०

है हरि नाम को आधार ।
और यहि कलिकाल नाहिन रह्यो विधि ब्यौहार ।।
नारदादि सुकादि संकर कियो यहै विचार ।
सकल श्रुति-दधि मथन पायो इतनोई घृतसार ।।
दसहु दिसि गुन कर्म रोक्यो मीन को ज्यों जार ।
'सूर' हरि को भजन करतहिं मिटि गयो भव भार ।।

---

२८ रीतो — रिक्त; निषंग — तरकश, तुणीर ।

२९ सेत — सफेद, उजला; कूपजल — कुए का पानी; गंगोदक — गंगाजल ।

३० ब्यौहार — बर्ताव, व्यवहार; जार — जाल ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बालकृष्ण

१

हौं एक बात नई सुनि आई ।
महरि जसोदा ढोटा जायो घर घर होत बधाई ।।
द्वारे भीर गोप गोपिन की महिमा बरनि न जाई ।
अति आनन्द होत गोकुल में रतन भूमि सब छाई ।।
नाचत तरुन वृद्ध अरु बालक गोरस कीच मचाई ।
'सूरदास' स्वामी सुख-तागर सुन्दर स्याम कन्हाई ।।

२

आजु नंद के द्वारे भीर ।
एक आवत एक जात बिदा होइ एक ठाढे मंदिर के तीर ।।
कोउ केसर कोउ तिलक बनावत कोउ पहिरत कंचुकि चीर ।
एकन को दै दान ससरपत एकन को पहिरावत चीर ।।
एकन को भूषन पाटम्बर एकन को जु देत नग हीर ।
एकन को पुहुपन की माला एकन को चंदन घसि बीर ।।
एकन को तुलसी की माला एकन को राखत दै धीर ।
'सूरस्याम' घनस्याम सनेही धन्य जसोदा पुन्य सरीर ।।

---

१ ढोटा — लड़का; बधाई — मुबरकबाद; कीच — कीचड़, पंक ।
२ ठाढे — खडे थे, खड़े रहे; पाटंबर — रेशमी वस्त्र; पुहुपन—पुष्प ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३

जसोदा हरि पालनैं झुलावै ।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै ।।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै ।
तू काहैं नहिं बेगहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै ।।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावै ।।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै ।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नंद-भामिनि पावै ।।

४

देखो यह विपरीत भई ।
अद्‌भुत रूप नारि करि आई, कपट हेत क्यों सहै दई ।।
कान्है लै जसुमति कोरा ते रुचि करि कंठ लगाई ।
तब वह देह धरी जोजन लौ स्याम रहे लपटाई ।।
बड भाग है नंद महर के बड़ भागिन नंदरानी ।
'सूर'स्याम उर ऊपर पारे यह सब घर घर जानी ।।

---

३ पालनै — हिंडोला; हलरावै — हलराती है; मल्हावै — चुमकारती-पुचकारती है; फरकावै — फडकाते हैं, हिलाते हैं; सैन — इशारा, संकेत (इंगित) ।

४ दई — दिया ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५

सुतमुख देखि जसोदा फूली।
हरषित देखि दूध की दँतिया, प्रेममगन तन की सुधि भूली॥
बाहरि तें तब नन्द बुलाये, देखौ धौं सुंदर सुखदाई।
तनक तनक सी दूध-दँतुलियाँ, देखौ, नैन सफल करौ आई॥
आनँद सहित महर तब आए, मुख चितवत दोउ नैन अघाई।
सूर स्याम किलकत द्विज देख्यौ, मनौ कमल पर बिज्जु जमाई॥

६

गुपालै माई पालने झुलाए।
सुर मुनि कोटि देव तैंतीसौ देखन कौतुक छाए॥
जाको अंत न ब्रह्मा जानत सिव सनकादि न पाए।
सो अब देखो नँद जसोदा हरषि हरषि हुलराए॥
हुलसत हुलसि करत किलकारी मन अभिलाष बढाए।
'सूर' स्याम भगतन हित कारन नाना भेस बनाए॥

७

खींचत जात माखन खात।
अरुन लोचन, भौंह टेढी, बार-बार जंभात॥
कबहुं रुनझुन चलत घुटुरुनि, धूरि धूसर गात।
कबहुं झुकि कै अलक खैंचत, नैन जल भरि जात॥

---

५ दँतुलियाँ — बच्चों के छोटे छोटे दाँत; अघाई — इच्छा पूर्ण हुई।
६ भेस — पहनावा।
७ जंभात — जंभाई लेते हैं, जंभाते हैं; धूरि — धूल।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कबहुं तोतर बोल बोलत, कबहुं बोलत तात ।
सूर हरि की निरखि सोभा निमिष तजत न मात ।।

८

जबहि भयो कनछेदन हरि को ।
सुर बनिता सब कहत परसपर ब्रजबासी-दासी समसरि को ।।
गोपी मगन भई सब गावति हलरावति सुत महर महरि को ।
जो सुख मुनिजन ध्यान न पावत सो सुख नद करत सब घरि को ।
मनि मुकतागन करत निछावरि तुरत देत बिलमति नहिं घटिको ।
'सूर' नंद व्रजजन पहिरावत उमँगि चल्यो सुख-सिंधु लहरि को ।।

९

सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए ।।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए ।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहिं पिए ।।
कठुला-कण्ठ, ब्रज केहरि-नख, राजत रुचिर हिए ।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प णिए ।।

---

८ कनछेदन — एक संस्कार, जो प्राय: मुँडन के साथ होता है और जिस में बच्चों के कान छेदे जाते हैं ।

९ नवनीत — मक्खन; रुधिर — सुन्दर, मनोहर; कठुला — गले में पहनाने की; एक माला जिस में चाँदी सोने की — चौकियों के साथ बाघ के नख, नज़र से बचाने केलिए गुथे रहते है; केहरि — सिंह, शेर ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१०

बाल-बिनोद खरो जिय भावत ।
मुख प्रतिबिंब पकरिबे कारन हुलसि घुटुरुवनि धावत ।
छिनक माँझ त्रिभुवन की लीला सिसुता माँह दुरावत ।
सबद एक बोल्यो चहत हैं प्रगट बचन नहीं आवत ।।
कमल नैन माखन माँगत हैं ग्वालिन सैन बतावत ।
'सूर' स्याम सु सनेह मनोहर जसुमति प्रीत बढ़ावत ।।

११

हौं बलि जाऊँ छबीले लाल की ।
धूसरि धूरि घुटुरुवन रेंगनि, बोलनि बचन रसाल की ।।
छिटकि रहीं चहुंदिसि जु लटुरियाँ लटकन-लटकनि भाल की ।
मोतिन सहित नासिका नथुनी, कण्ठ कमलदल-माल की ।।
कछुकै हाथ, कछू मुख माखन चितवनि नैन बिसाल की ।
'सूर' सु प्रभु के प्रेम मगन भई ढिग न तजनि ब्रज-बाल की ।।

---

१० खरो — बहुत अधिक, ज्यादा; माँझ — में, भीतर; भक्त — भागते है, दौड पडते हैं; दुरावत — छिपाते हैं, आड में करते है, गुप्त रखते हैं; सैन — इशारा, संकेत या इंगित ।

११ छबीले — सुहावना, सुन्दर; ढिग — दिशा, ओर, तरफ; लटुरियाँ — अलकें; नथुनी — नाक में पहनने की छोटी नथ ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१२

कहाँ लौं बरनौ सुन्दरताई ।
खेलत कुंवर कनक आँगन में नैन निरखि छबि छाई ॥
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहुविधि सुरंग बनाई ।
मानो नवघन ऊपर राजत मघवा धनुष चढाई ॥
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन मोहन मुख बगराई ।
मानो प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आई ॥
नील सेत पर पीत लाल मनि लटकन भाल लुनाई ।
सनि गुरु-असुर देवगुरु मिली मनौ भौम सहित समुदाई ॥
दूध दंत दुति कहि न जाति अति अद्भुत एक उपमाई ।
किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनौ घन में बिज्जु छपाई ॥
खंडित बचन देत पूरन सुख अलप जलप जलपाई ।
घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित 'सूरदास' बलि जाई ॥

१३

हरि जू की बाल छबि कहौं बरनि ।
सकल सिव की सींव कोटि मनोज सोभा हरनि ॥
भुज भुजंग सरोज नयननि बदन बिधु जित्यो लरनि ।
रहे बिबरन, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि ॥

---

१२ लौं — तक; छबि — शोभा, काँति; कंज — कमल; नगराई — फैलकर, बिखर कर; अवली — पंक्ति, पाँति ।

१३ कहौं — किस स्थान पर, किस जगह; बरनि — वर्णन करके; मेचक — काला, श्याम; लरखरनि — चलने या खडे होने के ठीक से पैर न जमने का भाव, डगमगाहट ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषण-भरनि ।
मनहुँ सुभग सिंगार-सिसुतरु फरयो अदभुत फरनि ।।
लसत कर प्रतिबिंब मनि आँगन घुटुरुवन चरनि ।
जलज संपुट सुभग छबि भरि लेत उर जनु धरनि ।।
पुन्यफल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नन्द-घरनि ।
'सूर' प्रभु की बसी उर किलकनि ललित लरखरनि ।।

१४

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत ।
मनिमय कनक नंद के आँगन मुख प्रतिबिंब पकरिबे धावत ।।
कबहुं निरखि हरि आप छाँइ को पकरन को चित चाहत ।
किलकि हँसत राजत द्वै दंतियाँ पुनि पुनि तिहिं अवगाहत ।।
कनक-भूमि पर कर पग छाया यह उपमा एक राजत ।
प्रति कर प्रति पद प्रतिमनि बसुधा कमल बैठकी साजत ।।
बालदसा-सुख निरखि जसोदा पुनि पुनि नंद बुलावति ।
अँचरा तर लै ढाँकि 'सूर' प्रभु जननी दूध पियावति ।

१५

सिखवत चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पैया ।।
कबहुँक सुन्दर बदन बिलोकति उर आनंद भरि लेति बलैया ।
कबहुँक बलको टेरि बुलावति इहिं आँगन खेलो दोउ भैया ।।
कबहुँक कुल देवता मनावति चिरजीवै मेरो बाल कन्हैया ।
'सूरदास' प्रभु सब सुखदायक अति प्रताप बालक नंदरैया ।।

---

१४ अवगाहत — खोजते हैं, ढूँढते हैं; बैठकी — बैठने का आसन, पीठ ।
१५ अरबराइ — लटपटाकर ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१६

कान्ह चलत पग द्वै द्वै धरनी ।
जो मन में अभिलाष करत ही सो देखत नँदघरनी ।।
रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है सन हरनी ।
बैठ जात पुनि उठत तुरत ही सो छबि जाय न बरनी ।।
ब्रज जुबती सब देखि थकित भइँ सुन्दरता की सरनी ।
चिरजीवो जसुदा को नन्दन 'सूरदास' को तरनी ।।

१७

भीतर ते बाहिर लौं आवत ।
घर आँगन अति चलन सुगम भयो देह देहरी मैं अटकावत ।।
गिरि-गिरि परत जात नहिं उलँघी, अति स्रम होत, न धावत ।
अहुठ पैग बसुधा सब कीन्ही धाम अवधि बिरमावत ।।
मनही मन बल बीर कहत हैं ऐसे रंग बनावत ।
'सूरदास' प्रभु अगनित महिमा भगतन के मन भावत ।

---

१६ रुनुक — नूपुर आदि की झनकार; झुनुक — झुनझुन शब्द के साथ; थकित — थका हुआ; सरनि — ढंग, रीति ।

१७ लौं — तक, पर्यन्त; देहरी — नदी किनारे की निचली भूमि; अटकावत — रुकावट; उलँघी — उलंघन की, भाँति; धावत — भागते हैं; अहुठ — साढे तीन; बनावत — रूप परिवर्तित करता है; बिरमावत — ठहर जाते हैं, रुक जाते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१८

सो बल कहाँ गयो भगवान ।
जेहि बल मीन रूप जल थाह्यो लियो निगम हति असुर पुरान ।।
जेहि बल कमठ पीठ पर गिरि धरि सजल सिंधु मथि कियो बिमान ।
जेहि बल रूप बराह दसन पर राखी पुहुमी पुहुप समान ।।
जेहि बल हिरनकसिपु तनु फारयो भये भगत हित कृपानिधान ।
जेहि बल बलि बंधन करि पठयो त्रैपद बसुधा करी प्रमान ।।
जेहि बल बिप्र तिलक दै थापो रच्छा आपु करी बिदमान ।
जेहि बल रावन के सिर काटे कियो बिभीषन नृपति समान ।।
जेहि बल जाँबवंत मद मेटचौ, जेहि बल ध्रुव बिनती सुनि कान ।
'सूरदास' अब धाम देहरी चढि न सकत हरि खरेई अयान ।।

१९

कजरी को पय पियहु लला तेरी चोटी बढै ।
सब लरिकन में सुन सुन्दर सुत तो श्री अधिक चढै ।।
जैसे देखि और ब्रज बालक त्यौं बल बैस बढै ।
कंस केसि बक बैरिन के उर अनुदिन अनल डढै ।।

---

१८ थाह्यो — थाह ली; कमठ — कच्छप, कछुआ (२) पुराने ढंग का एक बाजा जिसपर चमडा मढा जाता था। बिमान — वायुयान, रथ; पुहुमी — पृथ्वी; त्रैपद — तीन पैरों में नापने की क्रिया; प्रमान — हद, मान, सीमा; थापो — प्रतिष्टित करना; बिदमान — उपस्थित; रच्छा — बचाव, रक्षण; मेटचौ — मिटाया, दूर किया; खरेई — बहुत, अत्यन्त ।

१९ लरिकन — लडका; बैस — आयु, उम्र; बक — बकासुर; केसि — कंस का दरबारी एक राक्षस जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था;

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह सुनि कै हरि पीवन लागे, ज्यौं त्यौं लियो पढै ।
अँचवत पै तातो जब लाग्यो रोवत जीभ गढैं ॥
पुनि, पीवत ही कच टकटोवै झूठै जननि रढै ।
'सूर' निरखि मुख हँसत जसोदा सो सुख मुख न कढै ॥

२०

मैया कबहि बढैगी चोटी ।
किती बार मोहिं दूध पिवत भई यह अजहूं है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी ।
काढत गुहत न्हवावत ओंछत नागिनि सी भुँइ लोटी ॥
काचो दूध पिवावत पचि पचि देत न माखन रोटी ।
'सूर' स्याम चिरजिव दोउ भैया हरि हलधर की जोटी ॥

२१

मैया, मैं तौ चंद-खिलौना लैहौं ।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं ॥
सुरभी कौ पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं ।
ह्वैहौं पूत नंद बाबा कौ, तेरौ सुत न कहैहौं ॥

डढै — जलाकर; कै — कितना; अँचवत — पीते, पान करते ही; तातो — गरम, जलानेवाला; रढै — रढता है, बहुकाती है; कढै — निकले बाहर हो ।

२० गुहत — गूँथकर; ओंछत — बालों में कंघी करता है; भुँइ — भूमि; काचो — कच्चा; जोटी — जोडी, युग्मक ।

२१ लैहौं — प्राप्त करूँगा; जैहौं — जाऊँगा; ऐहौं — आऊँगा; गुहैहौं—गुँथवाऊँगा; दुलहिया—वधु; बियाहन—विवाह करने ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आगैं आउ, बात सुनि मेरी, बलदेवहिं न जनैं हौं।
हँसि समुझावति कहति जसोमति, नई दुलहिया दैहौं॥
तेरी लौं, मेरी सुनि मैया, अबहिं बियाहन जैहौं।
सूरदास ह्वै कुटिल बराती, गीत सुमंगल गैहौं॥

२२

तुम जागौ मेरे लाड़िले, गोकुल-सुखदाई।
कहति जननि आनंद सौं, उठौ कुँवर कन्हाई॥
तुमकौं माखन-दूध-दधि, मिस्री हौं ल्याई।
उठि कै भोजन कीजिऐ, पकवान मिठाई॥
सखा द्वार परभात सौं, सब टेर लगाई।
बन कौं चलिऐ साँवरे, दयौ तरनि दिखाई॥
सुनत बचन अति मोद सौं, जागे जदुराई।
भोजन करि बन कौं चले, सूरज बलि जाई॥

२३

खेलन कौं हरि दूरि गयौ री।
संग-संग धावत डोलत हैं, कह धौं बहुत अबेर भयौ री॥
पलक ओट भावत नहिं मोकौं, कहा कहौं तेहिं बात।
नंदहिं तात-तात कहि बोलत, मोहिं कहत है मात॥
इतनी कहत स्याम-धन आम, ग्वाल सखा सब चीन्हे।
दौरि जाइ उर लाइ सूर प्रभु, हरषि जसोदा लीन्हे॥

---

२२ मिस्री — मिसरी; टेर — पुकार, टीप; जदुराई — श्रीकृष्ण।
२३ दौरि — दौडकर।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२४

खेलत स्याम अपने रंग ।
नंद-लाल निहारि सोभा, निरखि थकित अनंग ।।
चरन की छबि देखि डरत्यौ अरुन, गगन छपाइ ।
जानु करभा की सबै छबि, निदरि, लई छड़ाइ ।।
जुगल जंघनि खंभ-रंभा, नाहि समसरि ताहि ।
कटि निरखि केहरि लजाने, रहे बन-घन चाहि ।।
हृदय हरि-नख अति बिराजत, छबि न बरनी जाइ ।
मनौ बालक बारिधर नव, चंद दियौ दिखाइ ।।
मुक्त-माल बिसाल उर पर, कछु कहौं उपमाइ ।
मनौ तारा-गननि बेष्ठित गगन निसि रह्यौ छाइ ।।
अधर अरुन, अनूप नासा, निरखि जन-सुखदाइ ।
मनौ सुक, फल बिंब कारन, लेन बैठ्यौ आइ ।।
कुटिल अलक बिना बपन के मनौ अलि-सिसु-जाल ।
सूर प्रभु की ललित सोभा, निरखि रहीं ब्रज-बाल ।।

२५

हँसत गोपाल नंद के आगौं नंद सरूप न जान्यौ ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन लीलाधर, सोई सुत करि मान्यौ ।।
एक समय पूजा कैं अवसर, नंद समाधि लगाई ।
सालिग्राम मेलि मुख भीतर, बैठि रहे अरगाई ।।

---

२४ छपाइ — छिपाकर; करभा — हाथी का बच्चा; निदरि — पराजित करके; बरिधर — बादल; बेष्ठित — छाया हुआ; नासा—नाक

२५ अरगाई — मौन होकर; मेलि — डालकर, रखकर ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्यान विसर्जन कियौ नंद जब, मूरति आगौं नाहीं।
कह्यौ गोपाल देवता कह भयौ, यह बिसमम मन माहीं ।।
मुख तैं काढि तबै जदुनंदन, दियौ नंद कैं हाथ।
सूरदास स्वामी मुख-सागर खेल रच्यौ ब्रज-नाथ ।।

२६

सखा सहित गए माखन-चोरी।
देखौ स्याम गवाच्छ-पंथ ह्वौ, मथति एक दधि मोर भोरी ।।
हेरि मथानी घरी माट तैं, माखन हो उतरात।
आनुन गई कमोरी माँगन, हरि पाई हयाँ घात ।।
पैठे सखनि सहित घर सूनैं, दधि माखन सब खाए।
छूछी छाँडि मटुकिया दधि की, हँसि सब वाहिर आए ।।
आइ गई कर लिए कमोरी, घर तैं निकसे ग्वाल।
माखन कर, दधि मुख लपटानौ, देखि रही नँदलाल ।।
कहँ आए ब्रज-बालक सँग लै, माखन मुख लपटान्यौ।
खेलत तैं उठि भज्यौ सखा यह, इहिं घर आइ छपान्यौ ।।
भुज गहि लियौ कान्ह एक बालक, निकसे ब्रज की खोरि।
सूरदास ठगि रही ग्वालिनी, मन हरि लियौ अँजोरि ।।

---

२६ गवाच्छ — झरोखा; मथति — बिलोती है; मथानी — काठ का वह दंड जिससे दही मथा जाता है; कमोरी — मिट्टी का चौडे मुंह का बरतन जिसमें दुध दही रखा जाता है; माट — मटका जिसमें दही आदि रखा जाता है; ठगि — चकित हुई, दंग रह गई; अंजोरी — छीनकर, हरण करके।

२७

भाजि गयौ मेरे भाजन फोरि ।
लरिका सहस एक सँग लीन्हे, नाचत फिरत साँकरी खोरि ।।
मारग तौ कोउ चलन न पावत, धावत गोरस लेत अँजोरि ।
सकुच न करत, फाग सी खेलत, नारी देत, हँसत मुख मोरि।।
बात कहौं तेरे ढ़ोटा की, सब ब्रज बाँध्यो प्रेम की डोरि ।
टोना सौ पढ़ि नावत सिर पर, जो भावत सो लेत है छोरि।
आपु खाइ सो सब हम मानैं, औरनि देत सिकहरैं तोरि ।
सुर सुतहिं बरजौ नन्दरानी, अब तोरत चोली बँद-डोरि ।।

२८

जसुदा तेरौ मुख हरि जोवै ।
कमलनैन हरि हिचिकिनि रोवै, बन्धन छोरि, जसोवै ।।
जौ तेरौ सुत खरौ अचगरौ, तऊ कोखि कौ जायौ ।
कहा भयौ जौ घर कैं ढोटा, चोरी माखन खायौ ।।
कोरी मटुकी दह्यौ जमायौ, जाख न पूजन पायौ ।
तिहिं घर देव पितर काहे कौं जा घर कान्हर आयौ ।।

---

२७ साँकरी — कम चौडी· तंगा; खोरि — छींके को; टोना — तंत्र मंत्र का प्रयोग, जादु; सिकहरैं — छींके को; बरजौ — मना करो, रोको; छोरी — अलग की; तोरत — तोडता है; हिचकिनी— सिसक सिसककर रोना ।

२८ खंरौ — अधिक; अचगरौ — नटखट, चंचल; कोखि — गर्भ; ढोटा — लडका; मटुकी — छोटा घडी; साँटि — मेल मिलाप ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाकौ नाम लेत भ्रम छूटै, कर्म-फंद सब काटै ।
सोई इहाँ जेवँरी बाँधे जननि साँटि लै डाँटै ॥
दुखित जनि दोउ सुत कुबेर के ऊखल आपु बँधायौ ।
सूरदास प्रभु भक्त-हेत ही देह धारि कै आयौ ॥

२९

देखि री नंद-नंदन-ओर ।
त्रास तैं तन त्रसिन भए हरि, तकत आनन तोर ॥
बार बार डरात तोकौं, बरन बदनहिं थोर ।
मुकुर मुख, दोउ नैन ढारत, छनहिं छन छबि-छोर ॥
सजल चपल कनीनिका पल अरुन ऐसे डोर (ल) ।
रस भरे अंबुजनि भीतर भ्रमत मानौ भौरँ ॥
लकुट कैं डर देखि जैसे भए स्रोनित ओर ।
लाइ उरहिं, बहाइ रिस जिय, तजहु प्रकृति कठोर ॥
कछुक करुना करि जसोदा, करनि निपट निहोर ।
सूर स्याम त्रिलोक की निधि, भलैंहि माखन-चोर ॥

३०

हरि के बाल-चरित अनूप ।
निरखि रहीं ब्रजनारि इकटक अंग-अँग-प्रति रूप ॥
बिथुरि अलकैं रहीं मुख पर बिनहिं बपन सुभाइ ।
देखि कंजनि चन्द के बस मधुप करन सहाइ ॥

---

२९ थोर — कम; कनीनिका — आँख की पुतली का तारा; लकुट—लाठी ।

३० इकटक — टकी टकी लगाकर देखने की क्रिया; बिथुरि—बिखरकर; बोरि — लपेटकर; कापै — किससे, किसके द्वारा ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सजल लोचन चारु नासा परम रुचिर बनाइ ।
जुगल खंजन करत अबिनति, बीच कियौ बनराइ ।।
अरुन अधरनि दसन झाईं कहौं उपमा थोरि ।
नील पुट बिच मनौ मोती धरे बन्दन बोरि ।।
सुभग बाल मुकुंद की छबि बरनि कापै जाइ ।
भृकुटि पर मसि-बिंदु सोहै सकै सूर न गाइ ।।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भ्रमरगीत

१

हमरे कौन जौंग ब्रत साधै ?
मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटा को, को इतनी अवराधै ।।
जाकी कहूं थाह नहिं पैमे अगम, अपार अगावै ।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधै ?
अ सन पवन भूति मृगछाला छाननि को अवराधै ?
'सूरदास' मानिक परिहरि कै राख गाँठ को बाँधै ।।

२

नेरो बुरो न कोऊ मानै ।
रस की बात मधुप नीरस सुनु, रसिक होत सो जानै ।।
दादुर बसै निकट कमलनि के जनम न रस पहिचानै ।
अलि अनुराग उडन मन बाँध्यो कहो सुनत नहीं कानै ।।
सरिता चलै मिलन सागर को कूल मूल द्रुम भानै ।
क यर बकै, लोह तें भाजै, लरै सो 'सूर' बखानै ।।

---

१ साधै — करता है; अधारी — आश्रय, काठ के डंडे में लगा हुआ साधुओं का पीढा; अवराधै — उपासना करते हैं, पूजते हैं ।

२ बुरो — बुरा; ढादुर — मेंढक; भानै — नश्ट भ्रष्ट करती है; बकै — बकता है; लरै — लडता है ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३

हरि काहे के अन्तरजामी ।
जो हरि मिलत नहीं यहि औसर अवधि बतावत लामी ॥
अपनी चोप जाय उठि बैठे और निरस बेकामी ।
सो कह पीर पराई जानै जो हरि गरुड़गामी ॥
आई उघरि प्रीति कलई सी जैसे खाटी आमी ।
'सूर' इते पर अनख मरत हैं, अधो पीवत मामी ॥

४

अपने स्वारथ को अब कोऊ ।
अपने करि रहौ, मधुप रस लंपट! तुम देखे अस बोउ ॥
औरो कछू सन्देस कहन को कहि पठयो किन सोऊ ।
लीन्हें फिरत जोग जुवतनि को बड़े सयाने दोऊ ॥
तब तक मोहन रास खिलाई जो पै ज्ञान हुतोऊ ।
अब हमारे जिय बैठी यह पद होनी होउ सो होऊ ॥
मिटि गयो, मान परेखो ऊधो, हिरदय हतो सो होऊ ।
सूरदास प्रभु गोकुलनायक चित चिन्ता अब खोऊ ॥

---

३ लामी — लंबी; चोव — चाह, इच्छा, शौक, रुचि; अमी — छोटा आम; मामी — दोष या आरोप पर ध्यान न देने का भाव ।

४ खोऊ — गँवाऊँ ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५

अँखियाँ हरि दरसन की भूखी ।
कैसे रहैं रूप रस राँची ये बतियाँ सुनि रूखी ॥
अवधि गनत. इक टक मग जोवत तब एती नहिं झूँखी ।
अब इन जोग सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी ॥
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी ।
'सूर' सिकत हठि नाव चलाओ ये सरिता हैं सूखी ॥

६

हमको हरि की कथा सुनाव ।
अपनी ज्ञान कथा हो ऊधो मथुरा ही लै जाव ॥
नागरि नारि भले बूझैंगी अपने बचन सुभाव ।
पालागों, इन बातनि, रे अलि ! उन्हीं जाय रिझाव ॥
सुनि प्रिय सखा स्यामसुन्दर के जो पै जिय सति भाव ।
हरि मुख अति आरत इन नयननि बारक बहुरि दिखाव ॥
जो कोउ कोटि जतन करे मधुकर बिरहिन और सुहाव ।
'सूरदास' मनि को जल बिन नाहिन और उपाव ॥

---

५ झूँखी — दुःखडा रोना; पतूखी — पत्ते का दोना; सिकत — रेत, बालू; सरिता — नदी ।

६ बूझैंगी — पूछो; बहुरि — फिर; उपाव — उपाय, साधन, युक्ति । सुहाव — सुन्दर, भला ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७

रहि रे मधुकर ! मधु मतवारे ।
कहा करौं निरगुन लैकै हौं, जीवहु कान्ह हमारे ।।
लोटत नीच पराग पंक में पचत न आपु सम्हारे ।
बारमबार सरक मदिरा की अपरस कहा उघारे ।।
तुम जानत हमहु वैसी हैं जैसे कुसुम तिहारे ।
धरी पहर सब को बिलमावत जेते आवत कारे ।।
सुन्दर स्याम कमलदल लोचन जसुमति नन्ददुलारे ।
'सूर' स्याम को सर्वसु अर्प्यो अब कापै हम लेहिं उधारे ।।

८

निर्गुन कौन देश के बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय सौंह दै बूझति साँच न हाँसी ।।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ।
कैसी बरन भेस है कैसो केहि रस में अभिलासी ।।
पावैगी पुनि कियो आपनो जो रे कहैगो गांसी ।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो 'सूर' सबै मति नासी ।।

---

७ अपरस — अस्पृश्य; बिलमावत — रोकता है; कापै — किस से ।

८ पावैगी — प्राप्त करेगी । गाँसी — ज़बरदस्ती वश में करेगा; ठग्यो — ठग लिया, धोखा दिया ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९

ऐसेई जन दूत कहावत ।
मोको एक अचम्भो आवत यामें ये कह पावत ?
बचन कठोर कहत, कहि दाहत, अपनो महत गँवावत ।
ऐसी प्रकृति परी काहु की जुवतिन ज्ञान बुझावत ।।
आपुन निलज रहत नख सिख लों एते पर पुनि गावत ।
'सूर' कहत परसंसा हारेहु जोति कहावत ।।

१०

तौ हम मानैं बात तुम्हारी ।
अपनौ ब्रह्म दिखावहु ऊधो मुकुट पिताम्बरधारी ।।
भजिहैं तब ताको सब गोपी सहि रहिहैं बस गारी ।
भूत समान बतावत हमको जारहु स्याम बिसारी ।।
जे मुख सदा सुधा अँचवत है ते विष क्यों अधिकारी ।
'सूरदास' प्रभु एक अंग पर रीझि रहीं ब्रजनारी ।।

---

९ परसंसा — बड़ाई; जोति — प्रकाश; हारेहु — प्रयत्न करते करते निराश हो गये ।

१० गारी — गली, दुर्वचन; अंचक्त — पीते ही ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११

नयननि बहै रूप जो देखौं ।
तौ ऊधो यह जीवन जग को साँचु सफल करि लेखौं ।।
लोचन चारु, चपल खंजन, मनरंजन हृदय हमारे ।
रुचिर कमल मृग मीन मनोहर स्वेत अरुन अरु कारे ।।
रतन जटित कुंडल श्रवननिबर गंडकपोलन झाँई ।
मुनि दिनकर प्रतिबिम्ब मुकुर महँ ढूढत यह छबि पाई ।।

१२

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं ।
तब ये लता लगति अति सीतल अब भई विषह ज्वाल की पुंजैं।।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं ।
पवन, पानि, घनसार, सजीवनि, दधिसुत किरन भानु भई भुंजैं ।।
ये ऊधो कहियो माधव सों बिरह करद कर मारत लुंजैं ।
'सूरदास' प्रभु को मग जोवत अंखिया भई बरन ज्यों गुंजैं ।।

---

११ खंजन — एक सुन्दर पक्षी जो बहुत चंचल होता है और जिस को उपमा कवि नेत्रों से देते हैं; झाँई — छाया, प्रतिबिंब, झलक ।

१२ लुंजैं — लूलालंगडा; मग जोवत — मार्ग देखता है; घनसार — कपूर; भुंजैं — तपाती है, जलाती हैं ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१३

उर में माखनचोर गडे ।
अब कैसेहु निकसत नहिं ऊधो तिरछो ह्वैजु अडे ॥
जदपि अहीर जसोदानन्दन तदपि न जात छडे ।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहिं न लगत बडे ॥
को वसुदेव देवकी वै को, ना जानें औ बूझैं ।
'सूर' स्यामसुन्दर बिनु देखे और न कोऊ सूझैं ॥

१४

उपमा एक न नैन गही ।
कविजन कहत कहत चलि आये सुधि करि करि काहु न कही ॥
काहे चकोर, मुख विधु बिनु जीवत, भँवर न तहँ उडि जात ।
हरिमुख कमल कोस बिछुरे ते ठाले क्यौं ठहरात ॥
खंजन मनरंजन जन जौ पै कबहुं नाहिं सतरात ।
पंख पसारि न उड़त, मन्द ह्वै समर समीप बिकात ॥
आये बधन ब्याध ह्वै ऊधो, जौ मृग क्यौं न पलाय ।
देखत भागि बसैं धन बन में जहँ कोउ संग न जाय ॥
व्रजलोचन बिनु लोचन कैसे ? प्रतिदिन अति दुख बाढ़त ।
'सूरदास' मीनता कछू इक जाल भरि संग न छाँडत ॥

---

१३ गडे — चुभे; ह्वैजु — हो कर; निकसत — निकलते हैं ।

१४ गही — पकडी; बिधुरे — बिछुडे; ठाले — निठल्ला, बेकार ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१५

अति मलीन वृषभानुकुमारी ।
हरि स्रमजल अन्तर तनु भीजे ता लालच न धुआवति सारी ।
अधमुख रहति उरध नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी ।।
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी ।
हरि सँदेस सुनि सहज मृतक भई इक बिरहिन दूजे अलि जारी ।।
'सूर' स्याम बिनु यों जीवित हैं ब्रजबनिता सब स्यामदुलारी ।।

१६

ऊधो जाके माथे भाग ।
कुबिजा को पटरानी कीन्हीं, हमहीं देत बैराग ।।
तलफत फिरत-सकल ब्रजबनिता चेटी चपरि सोहाग ।
बन्यो बनायो संग सखी री ! वै रे हंस वै काग ।।
लौडी के घर डौंडी बाजी स्याम रंगे अनुराग ।
हाँसी कमलनयन संग खेलति बारहमासी फाग ।।
जोग को बेलि लगावन आये काटि प्रेम को बाग ।
'सूरदास' प्रभु अंग छाँडि कै चतुर बिचारत आग ।।

---

१५ जुआरी — जुआ खेलनेवाला; चिहुर — चिकुर ।

१६ तलफत — तड़पते हैं; लौंडी — दासी; डौंडी — ढिंढोरा पीटने का ढ़ोल; फाग — सावन मास में मनाये जानेवाला उत्सव जिसमें लोग एक दूसरे पर रंग छिड़काते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१७

ऊधो जाहु तुम्हें हम जाने ।
स्याम तुम्हें ह्याँ नाहिं पठाये तुम हौ बीच भुलाने ॥
व्रजवासिन सो जोग कहत हौ बातहु कहत न जाने ।
बड लागै न बिवेक तुम्हारी ऐसे नये अयाने ॥
हमसों कही लई सो सहि कै जिय गुनि लेहु अपाने ।
कहँ अबला कहँ दसा दिगम्बर सनमुख करो पहिचाने ॥
साँच कहो तुमको अपनी सौं बूझति बात निदाने ।
'सूर' स्याम जब तुम्हें पठाये तब नेकहु मुसुकाने ॥

१८

मधुकर तुम हौ स्याम सखाई ।
पालागों यह दोष बकसियो सम्मुख करत ढिठाई ॥
कौने रंक सम्पादा बिलसी सोवत अपने पाई ।
किन सोने की उडत चिरैया डोरी बाँधि खिलाई ॥
धाम धुआँ के कहो कौन के बैठा कहाँ अथाई ।
किन अकास तें तोरि तरैयाँ आनि धरी घर माई ॥
ओरन को माला गुहि कौने अपने करन बनाई ।
किन जल चलत नाव किन देखी उतरि पार को जाई ॥
कौन कमलनैनी पति छोडे जाय समाधि लगाई ।
'सूरदास' तू फिरि फिरि गावत यामें कौन बडाई ॥

---

१७ अयाने — अजान; निदाने — अंत में, आखिर; नेकहु — थोड़ा तनिक ।

१८ गही — पकडी, रोकी; ठहरात — थामना; सतरात — कोप या क्रोध करना है; बधन — हनन, हत्या; छाँडत — छोडत ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१९

मधुकर मन तो एकै आहि ।
सो तो लै हरि संग सिधारे जोग सिखावत काहि ।।
रे सठ, कुटिल बचन, रस लंपट अबलन तन घों चाहि ।
अब काहे को देत लौन हौ बिरह अनल तन दाहि ।।
परमारथ उपचार करत हौ बिरह व्यथा नहिं जाहिं ।
जाको राजदोष कफ व्यापै दही खवावत ताहि ।।
सुन्दर स्याम सलोनो मूरति पूरि रहीं हिय माँहि ।
'सूर' ताहि तजि निर्गुन सिंधुहि कौन सकै अवगाही ।।

२०

अब या तनहिं राखि का कीजै ।
सुनु री सखी ! स्यामसुन्दर बिन बाँटि विषम बिष पीजै ।।
कै गिरिए गिर चढिकै सजनी, स्वकर सीस सिव दीजै ।
कै दहिए दारुन दावानल जाय जमुन धँसि लीजै ।।
दुसह बियोग बिरह माधव के कौन दिनहिं दिन छीजै ।
'सूरदास' प्रीतम बिन राधे सोचि सोचि मन खीजै ।।

---

१९ आहि — हैं; सिधारे — गये, प्रस्थान किया; कफ — बलगम; खवावत — खिलाते हैं, भोजन कराते हैं ।

२० तनहिं — तन को; छीजै — क्षीण, कम होती है; खीजै — खिजलाता है झुंझलाता है ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२१

कहो तो सुख आपनो सुनाऊँ ।
ब्रज जुवतिन कहि कथा जो की क्यों न इतो दुख पाऊँ ॥
हौं यक बात कहत निरगुन की वाही में अटकाऊँ ।
वे उमडी बारिधि तरंग ज्यों ज की थाह न पाऊँ ॥
कौन कौन को उत्तर दीजै ताते भज्यों अगाऊँ ।
वे मेरे सिर पाटी पारहिं कन्या काहि ओढाऊँ ॥
एक आँधरो हिय की फूटी दौरे पहिरि खराऊँ ।
सूर सकल ब्रज षटदरसी, हौं बारहखरी पढाऊँ ॥

२२

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
हंससुता को सुन्दरि कगरि अस कुंजन की छाहीं ॥
वे सुरभी, वे बच्छ, दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं ।
ग्वाल बाल सब करत कोलाहल नाचत गहि गहि बाहीं ॥
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि मुकुताडुल जाहीं ।
जबहिं सुरति आवत वा सुख की जिय उमगत तनु माहीं ॥
अनगन भाँति करी बहु लीला जसुदानन्द निबाहीं ।
'सूरदास' प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं ॥

---

२१ वाही — वही; अटकाऊँ — फँस जाऊँ, उलझाऊँ; थाह — गहराई; अगाऊँ — अगला, आगे का; पाटी — माँडा के दोनों ओर के बैठे हुए बाल ।

२२ कगरी — किनारा; उमगत — उल्लास, आनन्द ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२३

सुनि गोपी हरि को संदेस ।
करि समाधि अन्तरगत चितवो प्रभु को यह उपदेस ।
वे अविगत, अबिनासी, पूरन, घट धट रहे समाय ।
तिहि निहचय कै ध्यावहु ऐसे सुचित कमल मन लाय ।।
यह उपाय करि बिरह तजोगी मिलै ब्रह्म तब आय ।
तत्वज्ञान बिन मुक्ति न होई निगम सुनावत गाय ।।
सुनत सँदेस दुसह माधव के गोपीजन बिलखानी ।
'सूर' बिरह की कौन चलावे नयन ढरत अति पानी ।।

२४

ऊधो यह हरि कहा कर्‌यो ।
राजकाज चित दयो साँवरे गोकुल क्यों बिसर्‌यो ?
जौं लों घोस रहे तौ लों हम सन्तन सेवा कीनी ।
वारक कबहुं उलूखल बाँधे सोइ मानि जिय लीनी ।।
जो तुम कोटि करो ब्रजनायक बहुतं राजकुमारि ।
तौ ये नन्द पिता कहँ मिलिहैं अरु जसुमति महतारि ।।
कहँ गोधन कहँ गोप बृन्द सब कहँ गोरस को खैबो ।
'सूरदास' अब सोई करो जिहि होय कान्ह को ऐबो ।।

---

२३ समाय — समा जाय, लीन हो जाय; ध्यावहु — ध्यान करते हैं; ढरत — बहता हैं ।

२४ घोस — अहीर, ग्वाला; वारक — निषेध करनेवाला; कीनी — किया; खैबो — खाना पीना; ऐबो — आना, आवेंगे ।

२५

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब तें स्याम सिधारे ॥
दृग अंजन लगत नहिं कबहूं उर कपोल भए कारे ।
कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी बर बिच बहत पनारे ॥
'सूरदास' प्रभु अम्बु बढ्यो है गोकुल लेहु गबारे ।
कहँ लौं कहौं स्याम घन सुन्दर विकल होत अति भारे ॥

---

२५ सिधारे — गये, प्रस्थान किया; लेहु — लो, प्राप्त या ग्रहण करो; भारे — अधिक ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri